पंचम अध्याय

प्रेमचंद के आलोच्य नाटकों में प्रासंगिकता।

पंचम अध्याय

प्रेमचंद के आलोच्य नाटकों में प्रासंगिकता।

यह जिज्ञासा निर्विवाद है कि आधुनिक युग में पुराने साहित्यकारों द्वारा लिखित रचना को पढ़ने या पढ़ाने की आज प्रासंगिकता क्या है ? इस दृष्टि से प्रेमचंद के 'संग्राम' और 'कर्बला' नाटकों की प्रासंगिकता पर विचार करना उचित एवं अनिवार्य-सा प्रतीत होता है।

साहित्य की प्रधान प्रवृत्ति प्रासंगिकता है और यही साहित्य शाश्वत रहता है, जिसमें प्रासंगिकता है। समाज जीवन की स्थिति पर प्रकाश डालने का कार्य साहित्यकार करता है। साहित्य सिर्फ काल्पनिक आख्यान नहीं होता, बल्कि समाज जीवन की तस्वीर होती है। उसमें चित्रित प्रसंग आज के युग में भी यथार्थ लगते है। इसीकारण किसी भी रचना का अध्ययन करते समय प्रासंगिकता पर सोचना अनिवार्य है। प्रेमचंद के नाटक भी इसी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

5.1 प्रासंगिकता का कोशगत् अर्थ

5.1.1 नालंदा अद्यतन कोश में

प्रासंगिक के लिए प्रसंग, संबंधी प्रसंग द्वारा प्राप्त किसी प्रसंग में आकस्मिक रूप से सम्मुख आनेवाला, अकालिक[1]

5.1.2 राजपाल शब्द कोश में

प्रसंग का, प्रसंग से संबंध रखनेवाला, प्रसंग[2]

5.1.3 नूतन पर्यायवाची विपर्याय कोश में

अवसरोचित, प्रसंगोचित, विषयानुरूप, विषयोचित relevant[3] आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। यहाँ स्पष्ट है, प्रासंगिकता का संबंध प्रसंग से है। साहित्यकार विभिन्न प्रसंगों का चित्रण करता है। प्रेमचंद का साहित्य बहुमुखी प्रसंगों का सृजन ही है।

साहित्य के क्षेत्र में किसी भी काल या युग का, किसी भी प्रकार का साहित्य क्यों न हो, यदि साहित्य

---

1. पुरुषोत्तम नारायण अग्रवाल - 'नालंदा अद्यतन कोश', पृ. 589
2. डॉ. हरदेव बाहरी - 'राजपाल हिंदी शब्दकोश', पृ. 551
3. डॉ. बदरीनाथ कपूर - 'नूतन पर्यायवाची एवं विपर्याय कोश', पृ. 105

वास्तविक रहा तो शुद्ध साहित्य के रूप में वह सदा सर्वदा प्रासंगिक रहेगा, पठनीय रहेगा। 'डॉ. बच्चनसिंह' लिखते है - ''समकालीन जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में साहित्य की अर्थवत्ता की तलाश का नाम प्रासंगिकता है।''[1] साहित्य का शिल्प तो महत्त्वपूर्ण है, अपितु उससे अधिक महत्त्वपूर्ण है उसका कथ्य, उसका संदेश। इस दृष्टि से जो साहित्य होगा वह निश्चित रूप से अधिक महान होगा। प्रेमचंद के आलोच्य नाटकों में उसे हम कई रूपों में देख सकते है।

1. प्रेमचंद का प्रासंगिक दृष्टिकोण
2. 'संग्राम' और 'कर्बला' की तत्कालीन प्रासंगिकता
3. 'संग्राम' और 'कर्बला' की समकालीन प्रासंगिकता

5.2 प्रेमचंद का प्रासंगिक दृष्टिकोण

साहित्य की प्रासंगिकता का प्रश्न बहुत पुराना नहीं, बल्कि यह कहा जाए कि यह बीसवीं शताब्दी की उपज है। तो अत्युक्ति नहीं होगी। कही आचार्यो ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के साथ आनंद की सृष्टि, लोकव्यवहार की शिक्षा, सामाजिक उद्देश्य की 'पूर्ति 'कांता सम्मित उपदेश' आदि प्रयोजनों की स्थापना की। लेकिन उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी की अंग्रेजी दासता से उपजे भारतीय पुनर्जागरण, स्वराज्य, स्वदेशी, स्वसंस्कृति तथा स्व-भाषा के राष्ट्रीय आंदोलन ने साहित्य के प्रयोजन अर्थवत्ता एवं प्रासंगिकता में समूल परिवर्तन कर दिया है।

हम जानते हैं कि व्यक्ति समाज की सबसे छोटी इकाई है। वह सामाजिक प्राणी है। समाज अनेक व्यक्तियों का विशाल समूह है। प्रायः यह सक्रिय तथा परिवर्तनशील होता है। इसकी विभिन्न ईकाइयाँ परिवार, समूह, वर्ग, संप्रदाय, राज्य, देश, राष्ट्र आदि है। समाज के भीतर व्यक्ति का संतुलित विकास होता है। व्यक्ति की अर्थात मनुष्य की चेतना उसकी बुद्धिमत्ता तथा शारीरिक उपलब्धियाँ भी समाज पर निर्भर रहती है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति के वैचारिक चिंतन का स्वरूप सामाजिक रहता है। जहाँ पर वर्ग विभक्तता होती है वहाँ पर सामाजिक दृष्टिकोण में भिन्नता नजर आती है। जब ऐसा होता है तब समाज में एक ही साथ भिन्न-भिन्न मूल्य तथा दृष्टिकोण स्थापित होते रहते हैं। हम इन्हें धर्म, दर्शन, कला, साहित्य आदि क्षेत्रों में देख सकते हैं। प्रासंगकिता का प्रश्न जीवन और साहित्य दोनों में नयी पीढ़ी - पुरानी पीढ़ी के सम्मुख रहा है। नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की सोच, जीवनदृष्टि, नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आया है, आज की नयी पीढ़ी अपनी नयी प्रासंगिकता की खोज कर रही है। प्राय हर काल में पुरानी पीढ़ी को 'आऊट डेटिड', 'समय से पीछे', 'दकियानुसी' आदि

1. डॉ. बच्चनसिंह - 'आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज', पृ. 67

विभिन्न आरोपों को झेलना पड़ा है, परंतु कोई भी नयी पीढ़ी संपूर्ण रूप में पुरातन से मुक्त नहीं हो सकती और सर्वथा नये मूल्यों को नहीं अपना सकती। उसके लिए पुरातन की सार्थकता किसी न किसी रूप और मात्रा में बनी रहती है क्योंकि भूत, वर्तमान और भविष्य की काल शृंखला अटूट है और उस काल प्रवाह में ही प्रासंगिकता की तलाश की जा सकती है। मानव जीवन में चाहे नयी पीढ़ी हो या साहित्य में नयी लेखन की पीढ़ी उनकी यही पहचान उसके विरोध के साथ उनकी पूर्व पीढ़ी के साथ उनकी स-बद्धता और संबंधों के आधार पर ही हो सकती है।

प्रेमचंद समाज जीवन से जुड़े साहित्यकार है। वे उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र मानते हैं। साहित्यकार का कार्य सिर्फ मनोरंजन करना नहीं, बल्कि जीवन का चित्रण भी करना है। मदारी खेल दिखानेवाले अन्य लोग है, साहित्यकार नहीं। अर्थात् उनकी मान्यता है कि साहित्यकार जीवनानुभूति का यथार्थ चित्रण करके अपनी रचना में नए-नए प्रसंगों के द्वारा समाज का निर्माण करने का प्रयास करता है। प्रासंगिकता समाज निर्माण में शिक्षा देने में अहम रहती है। ऐसी उनकी मान्यता है।

कबीर की प्रासंगिकता

कबीर हिंदी के महान कवियों में से एक है। उत्तर भारत की हिंदी भाषी जनता में तुलसी के साथ-साथ यदि किसी अन्य कवि का काव्य लोगों की जबान पर है तो वह कबीर ही है।

भले ही कबीर का जन्म आज से 600 वर्ष पूर्व हुआ हो किंतु उनके विचार आज भी प्रासंगिक है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि आज उनके विचारों की आवश्यकता तत्कालीन युग की अपेक्षा अधिक है। हिंदू-मुस्लिम जनता आपस में मंदिर-मस्जिद के प्रश्न पर संघर्षरत रही। मंदिर-मस्जिद के नामपर साम्प्रदायिक दंगे होते रहे हैं। अयोध्या की बाबरी मस्जिद को ढांचा बनाने की बात चली थी, उसी समय कबीर के विचार मार्गदर्शक और प्रासंगिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रतित होते है। निश्चय ही कबीर के विचार आज के इस माहौल में अधिक प्रासंगिक है।

हमारी इन 6 सौ वर्षो में रंचमात्र भी प्रगती हुई नहीं है। वैज्ञानिक उपकरणों एवं सुख-सुविधा के साधनों को जुटाकर भले ही हम प्रगति का दावा करें किंतु हम मानवता के मोर्चे पर रंचमात्र भी प्रगति नहीं कर सके हैं। आज भी समाज में धार्मिक विद्वेष व्याप्त है, जातिप्रथा, समाज में विषमता बढ़ती गयी, समानता दिखाई नहीं देती, ऊँच-नीच की भावना वर्तमान समय में खान-पान के स्तर पर चाहे समाप्त हो रही हो किंतु विवाह संबंधों में अभी तक जातिवर्ण ही प्रमुख है।

कबीर के प्रासंगिकता में कोई कमी नहीं आती क्योंकि कबीर ने किसी विशेष संप्रदाय या पूजा पद्धति

का प्रचार नहीं किया। इसीलिए उन्होने परमेश्वर के लिए राम, कृष्ण, केशव, करीम, अल्लाह, रहमान, गोविन्द, माधव आदि सभी प्रचलित नामों को ग्रहण किया और शुद्धाचरण तथा निरभिमानता पर आधारित भक्ति को संदेश देकर प्रबोधन किया। साहित्य अपनी रसात्मकता एवं रमणीयता के कारण कभी अप्रसांगिक नहीं होता। कबीर का साहित्य हम जितनी बार पढ़ते है उतनी बार नवीनता का अर्थबोध होता है। इसीलिए उनका साहित्य सदैव प्रासंगिक रहा है।

कबीर कालीन समाज की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए डॉ. रमेश कुन्तक मेघ कहते है - ''मुस्लिम मध्यकाल की कुछ विशेषताएँ भी मिलती है, जैसे लोकभाषाओं का विकास, व्यापारियों और कारीगरों का अभ्युदय, दक्षिण से उभरकर उत्तर में फैलते हुए भक्ति आंदोलन का जन-जीवन में प्रवेश, मुसलमानों और इस्लाम की सशक्त सांस्कृतिक चुनौती''[1] अर्थात् इन नयी विशेषताओं ने मध्यकालीन समाज व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला है। कबीर ने परंपरागत सामाजिक अनुशासन को एक गंभीर चुनौती दी है। उन्होंने अपने युग के सामाजिक संघर्ष में अपने मनोनुकूल सक्रिय हिस्सा लिया।

कबीर की अमृतवाणी की आवश्यकता बराबर अनुभव की जा रही है। ऐसी स्थिति में कबीर की प्रासंगिकता पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता। वे कल भी प्रासंगिक थे, आज भी प्रासंगिक है और आनेवाले कल में भी प्रासंगिक रहेंगे, यह निःसंकोच कहा जा सकता है।

अज्ञेय

हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार अज्ञेय ने 'प्रासंगिकता का प्रश्न' इस आलेख में प्रासंगिकता की दो प्रमुख कसौटियाँ रची - एक है मानव की स्वाधीनता और दूसरी है सर्जनशीलता। अज्ञेय के अनुसार ''जो कुछ स्वाधीन है, प्रासंगिक है, जो वैसा नहीं वह प्रासंगिक नहीं है और इसीप्रकार जो सर्जनशीलता को अवकाश दे, बढ़ावा दे, वह प्रासंगिक है जो इसके प्रतिकूल हो वह अप्रासंगिक है।''[2] यह स्वाधीनता और सर्जनशीलता ही मानव को अधिक मानव बनाती है और इससे उसकी अर्थवत्ता बनी रहती है। प्रासंगिकता एक ओर अस्तित्व की मूल्यवत्ता से जुड़ा प्रश्न है, इस बात को हम उलटकर यों भी कह सकते है कि एक ओर वह अनिवार्यता काल-संदर्भ से जुड़ी रहती है मूल्यवत्ता हमेशा एक कालावधी के सन्दर्भ में प्रचलन होती है।

---

1. डॉ. रमेश कुन्तक मेघ - 'तुलसी - आधुनिक वातायनसे', पृ. 3-4
2. गगनाञ्चल - वर्ष 27, अंक - 1, 2004, पृ. 19

डॉ. नामवर सिंह

मार्क्सवादी आलोचक 'नामवर सिंह' ने 'प्रासंगिकता का प्रसाद' में प्रासंगिकता की प्रगतिशील कसौटियों की चर्चा नहीं की है परंतु उन्होने प्रासंगिकता के प्रश्न को प्रगतिशील चिंतन तत्वों के आधार पर उठाया है। उनका कथन है ''जो आज प्रासंगिक है, वहीं प्रासंगिकता पर विचार कर सकता है और आज जो प्रासंगिक है वह प्रगतिशील विचारक है, प्रगतिशील धारा के अनुयायी है, उनके अनुसार प्रासंगिक की चिंता 'प्रमाद' की सीमा तक बढ़ गयी है क्योंकि अतीत के हर बड़े लेखक को किसी न किसी तरह समकालीन बनाने की कोशिश हो रहीं है, जिसके कारण अतीत की अतीतता तो सुरक्षित रही ही नहीं बल्की वर्तमान की अपनी विशिष्टता भी लुप्त हो रही है।''[1]

प्रगतिशील जीवंत मूल्यों को प्रासंगिकता की कसौटी तथा इतिहास-बोध को उसके निर्णय का आधार मानते है और युग-युग में पुनर्नवता की क्षमता कृति को कालजयी और प्रासंगिक बनाती है।

5.3 *प्रेमचंद साहित्य की प्रासंगिकता*

प्रेमचंद की प्रासंगिकता के विवेचन में सब से पहले यह सवाल उठता है कि क्या प्रेमचंद जैसे बीते साहित्यकार की प्रासंगिकता के औचित्य पर विचार करना आवश्यक है ? क्या वे इतिहास की वस्तु हो गए हैं ? और आधुनिक भारत के निर्माण और विकास में उनका कितना योगदान है ? आदि कई प्रश्न निर्माण हुए है। यादव ने स्पष्ट रूप में लिखा है कि ''मैं नहीं मानता कि किसी भी लेखक के विषय, क्षेत्र, पात्र या व्यक्तिगत रचना, संसार वालों के लिए अनुकरणीय होते हैं।''[2] वास्तव में प्रश्न अनुकरण का नहीं सार्थकता का है।

प्रेमचंद की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए एक प्रश्न मेरे सामने बार-बार आता है कि क्या साहित्य की भी कोई प्रासंगिकता है, या हो सकती है या होनी चाहिए ? वाल्मीकि की 'रामायण' से लेकर आजतक के साहित्य की सार्थकता क्या अपने रचनाकाल तक ही सीमित है, अथवा काल के अनंत प्रवाह तक साहित्य जीवित रहनेवाला है ?

'रामायण', 'महाभारत', 'रामचरित मानस' आदि में तो दिखता है की उसपर अलौकिकता का गहरा प्रभाव है किंतु ये ग्रंथ आज भी किसी भी अन्य ग्रंथ की तुलना में अधिक सार्थक और प्रासंगिक है। साहित्य हमें मनुष्य की, समाज की, संस्कृति की, संघर्ष और उपलब्धियों की, सत्य-शिव और सुंदर की पहचान कराता है,

---

1. गगनाञ्चल - वर्ष 27, अंक - 1, 2004, पृ. 19

2. वही, पृ. 20

मनुष्य को श्रेष्ठ और परिकृष्त मनुष्य बनने का अवसर प्रदान करता है, अतः ऐसा साहित्य प्रत्येक काल में प्रासंगिक है और प्रेमचंद की प्रासंगिकता का सर्व प्रमुख आधार यह है कि उनका साहित्य हर युग का सत्य है। प्रेमचंद की प्रासंगिकता और अर्थवत्ता का यह आधार भी है कि वे सभी प्रकार की जड़ताओं, अंधविश्वासों, बंधनों तथा दास्यत्व के कारणों से मुक्ति का आह्वान करते है। प्रेमचंद ने लिखा था कि उनका एकमात्र लक्ष्य स्वराज्य की प्राप्ति है।

प्रेमचंद की यह स्वाधीनता का विचार और मुक्ति संघर्ष तो संपूर्ण समाज के लिए है, जिसमें किसान, श्रमिक है और भारत की हजारों वर्षों से पीड़ित नारी और दलित भी है। प्रेमचंद ने उसके लिए साहित्य की परिभाषा ही बदल दी है। वे मानते है ''जो असुंदर है, अभद्र है, अमानवीय है, साहित्यकार के लिए असह्य है और इस कारण लेखक का फर्ज है कि वह दलितों, पीड़ितों, वंचितों चाहे व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करे तथा समाज की अदालत में अपना इस्तगासा पेश करे और उसकी न्यायवृत्ति एवं सौंदर्यवृत्ति को जागृत करने का प्रयत्न करें।''[1]

यहाँ स्पष्ट है प्रेमचंद का साहित्य स्वाधिनता पूर्वकाल का होकर भी आज के युग में यथार्थ है। स्वतंत्रता, नारी मुक्ति, समानता, शोषणरहित समाज निर्माण आदि की दृष्टि में उनका साहित्य यथार्थ लगता है। उसमें चित्रित प्रसंग आज भी वास्तविक लगते हैं।

5.4 *'संग्राम' और 'कर्बला' की तत्कालीन प्रासंगिकता*

प्रासंगिकता का प्रश्न उन लेखकों के विषय में खड़ा हो सकता है जो वर्तमान काल की समस्याओं और चुनौतियों को प्रतिबिंबित न करते हो या इनसे उनके लेखन का दूरदराज का संबंध हो किंतु प्रेमचंद जिस राष्ट्रीय आंदोलन के साथ उभरे थे, उसके ध्येय अभी अधूरे है अतः स्वतंत्रता के पूर्व प्रेमचंद जो सामाजिक चेतना अपनी रचनाओं और लेखों में प्रदर्शित करते हैं, वह हमें आज भी प्रासंगिक लगती है।

प्रेमचंद गांधी युग के महान लेखक थे। इस अर्थ में वे एक गांधीवादी लेखक थे। आज यह देश गांधीयुग को पीछे छोड़ चुका लगता है। लेकिन केवल इसी कारण नहीं कि गांधी प्रासंगिक हैं, प्रेमचंद आज प्रासंगिक है, अतः वे समसामयिक लेखक हैं।

इस तरह, जो समीकरण सबसे पहले बना, वह यह है कि प्रेमचंद तत्कालीन थे पर वे सर्व कालीन भी थे, इसीलिए वे समकालीन है। प्रेमचंद के संग्राम और कर्बला नाटकों में तत्कालीन प्रासंगिकता पर विवेचन प्रस्तुत किया है।

---

1. गगनाञ्चल - वर्ष 27, अंक - 1, 2004, पृ. 23

संग्राम

5.4.1 जमींदारों और किसानों में पारस्परिक संघर्ष

जमींदारी प्रथा होने से किसानों का आर्थिक वजह से शोषण होता रहा है। शोषण की मूल वजह लगान है। इस लगान से ही जमींदार और किसानों के बीच संघर्ष होता है।

''हलधर - मुझे तो 60 रू लगान देने है। बैल-बधिया बिक जायेंगे तब भी पूरा न पड़ेगा।

एक किसान - बचेंगे किसके। अभी साल-भर खाने को चाहिए।

हलधर - क्या करना होगा ?

राजेश्वरी - होगा क्या, जैसी करनी वैसी भरनी होगी।''[1]

कर्बला

5.4.1 कर्बला ऐतिहासिक संग्राम धर्म और ईमान का प्रतीक

खिलाफत पद से हुसैन और यजीद में ऐतिहासिक संघर्ष होता है और यजीद गाँव में सबसे बैयत लेता है और लोगों को अपने वश में करने का प्रयत्न करता है। हुसैन से भी बैयत लेने की कोशिश करता है लेकिन सच्चे धर्म और ईमान से बंधे हुसैन बैयत कबूल नहीं करता है, इस वजह से ही हुसैन और यजीद में ईमान के वजह से धार्मिक संघर्ष होता है।

संग्राम

5.4.2 जमींदारों की असलियत का एक जीवंत दस्तावेज

प्रेमचंद ने जमींदार वर्ग की निरंकुशता, मक्कारी और लोलुपता को बेबाक तरीके से रखने की कोशिश की है।

ब्रिटिश सत्ता आने से किसान वर्ग उनकी गुलामी करना छोड़ देंगे और कम नजरों से देखने लगेंगे। इस वजह से सबलसिंह गाँव में किसानों पर हुकूमत नहीं करता है बल्कि उनकी सहायता करता है। और गाँव में पंचायत खोल देता है। लगान के रूप में जो पैसा बाहर जाता था वो अपने पास ठीक रहेगा।

---

1. प्रेमचंद - 'संग्राम', पृ. 31

कर्बला

5.4.2 सांप्रदायिक वैमनस्य और सद्‌भाव का चित्रण

सांप्रदायिक वैमनस्य हिंदू मुस्लिम में होता है बल्कि यहाँ वैमनस्य मुस्लिम समाज में आपस में होता है। अचरज की बात यह है कि हुसैन के तरफ से लड़नेवाले हिंदू - साहसराय, हरजसराय, सिंहदत्त, पुष्पराय, रामसिंह, ध्रुवदत्त, भीरूदत्त आदि हिंदू है जो इस नाटक में कीर्तन करते हुए देखे जाते है 'हरि धर्म प्राण से प्यारा हो' इस विषय में प्रेमचंद ने लिखा है - ''पाठक इसमें हिंदुओं को प्रवेश करते देखकर चकित होंगे, परंतु वह हमारी कल्पना नहीं है, ऐतिहासिक घटना है।''[1] यहाँ धर्म के भेदभाव न मानते हुए समानता दिखाई देती है।

अंत में प्रेमचंद ने सांप्रदायिक वैमनस्य मुस्लिम समाज में स्थित मजहब, खिलाफत से शुरू होता है।

संग्राम

5.4.3 जमींदारों की मूल प्रवृत्ति - नारी लोलुपता

सबलसिंह ने हलधर (किसान) की रूप सी पत्नी राजेश्वरी पर आसक्त होता है। इसके नतीजे में ''दुराचार और अन्याय का एक लंबा सिलसिला पूरे नाटक में चलता रहता है। राजेश्वरी पाने की ललक में उसका निरंकुश रूप भी सामने आता है। किसानों का हितैषी होने का ढोंग रचानेवाला यही जमींदार सबलसिंह अपने घोड़े के मुकाबले में हार जाने के बाद उसका 5,000 रूपयों का नुकसान होता है।''[2] संबलसिंह ने नुकसान भरपाई के लिए आंसमियों से निर्दयतापूर्वक रूपये वसूल करने का हुक्म देता है। अपने इसी कदम में वह राजेश्वरी को पाने की योजनाएँ बनाता है।

संबलसिंह आसामियों की जायदाद नीलाम करना चहता है और हलधर गाँववालों को भड़काता है और सुनियोजित ढंग से अपनी कामुकता की पूर्ति के लिए वह हलधर को जेल भिजवा देता है इस तरह से सबलसिंह जमींदार वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ दिखाई देता है।

कर्बला

5.4.3 हुसैन में दीन-ईमान के प्रति बेहद आस्था

हुसैन की पत्नी समझाते हुए भी कुफा के लोगों की सहायता करने जाता है और कुफावाले लोंग धोका

---

1. शैलेंद्रनाथ श्रीवास्तव - 'प्रेमचंद के नाटक', पृ. 87
2. वही, पृ. 60

दे सकते हैं लेकिन हुसैन अपने इरादे पर दृढ़ रहता है और कहता है इस्लाम की खिलाफत इतना आला रूतबा है कि उसकी कोशिश में जान देना भी जिल्लत नहीं मानता है।

समस्त विरोधों और दबावों के बावजूद भी हुसैन कूफा जाते है और वीरतापूर्वक लड़ते हुए प्राणोत्सर्ग करते है। इसतरह से हुसैन का चरित्र हिंदू धर्म कथाओं के उन्हीं अवतार पुरुषों की तरह है जो 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' की स्थिति में पृथ्वी पर अवतरित होते है। चाहे 'राम' का 'मर्यादा पुरुषोत्तम' जनहितवादी रूप हो, चाहे 'कृष्ण' का 'कंस संहारक लोक उध्दारक रूप' हुसैन भी उसी लोकरक्षक रूप के साथ सामने आता है। हुसैन की मृत्यु अन्याय और अनाचार की विजय नहीं है बल्कि इस लढ़ाई के भावी स्वरूप की सूचना है जो अन्याय और अनाचार के खिलाफ जारी रहता हैं।

संग्राम

5.4.4 किसानों की गरीबी, बेबसी और गुलामी का चित्रण

प्रेमचंद ने औपन्यासिक कृतियों की तरह अपने इस नाटक में भी कृषक जीवन के तमाम त्रासद पहलूओं पर अपनी बारीक दृष्टि केंद्रित की है। ठाकुर सबलसिंह जो बड़े ही उदार रूप में बेगार बंद करा देता है एकाएक किसानों पर अपना रोब समाप्त हो जाने के भय से दलहाई के बेगार की मांग करते है। सारे किसान इससे भयभीत हो जाते है लेकिन वे विद्रोह कर पाने की स्थिति में नहीं है। इस गुलाम मानसिकता की वजह काफी दिनो से चली आ रही है। वह सामंती ढांचा है जो उनकी रगो में बैठ गया है।

कचहरी की धक्के खाने से तो यही अच्छा है कि, जमींदार जो कहेंगे वो मान लेने में ही किसानों की भलाई है नहीं तो कानून, पुलिस, कचहरी सब जमींदारी के ही होते है। अपने वश में कोई नहीं होता और उनसे संघर्ष करने से कोई फायदा नहीं इस तरह से किसानों का शोषण होता है।

हलधर को 200 रूपयों की आवश्यकता होती है तो जमींदार से माँगने जाता है। काफी मशक्कत के बाद वह उन्होंने मुनीम को रुपये देने को कहता है यहाँ मुनीम और हलधर की बातचीत किसानों के आर्थिक शोषण की एक तस्वीर पेश हुई है।

''मुनीम : तो तुम्हें 200 रु. चाहिए। पहले 5 रु. सैकड़े नजराना लगता था। अब 10 रु. सैकड़े हो गया है।

हलधर : जैसी मरजी।

मुनीम : पहले 2 रु. सैकड़े लिखाई पड़ती थी, अब 4 रु. सैकड़े हो गई है।

हलधर : जैसा सरकार का हुकुम।

मुनीम : स्टाम्प के 5 रु. लगेंगे।

हलधर : सही है।

मुनीम : चपरासिपयों का हक्क 2 रु. होगा।

हलधर : जो हुकुम।

मुनीम : तो इस इस्टाप पर बाए अँगूठे का निशान करो।''[1]

यानी 200 रु. कर्ज पर 42 रु. अकारण दान करने को हलधर विवश है, सूद अलग से। यहाँ पर किसानों की गरीबी, बेबसी और गुलामी पर जमींदार का शोषण होता है, स्पष्ट है।

कर्बला

5.4.4 यजीद अन्याय, अनाचार और कूरता का प्रतीक

यजीद खिलाफत का पद हथियाने में है। अपनी इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति में वह अत्याचार को जायज समझता है। उसके सामने जनता की वेदना और हुसैन की ईमानदारी उसके लिए अर्थहीन है। मनुष्य और ईश्वर को धोखा देकर अपना पद बनाए रखने में उसकी साजिश मजहब के नाम पर किए जानेवाले अनाचार का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

किसी के साथ इज्जत से पेश आता नहीं। सबको अवमान करने की दृष्टि से देखता है। खुदा और मजहब से न डरते हुए वह हुसैन से डरता है। क्योंकि हुसैन के पक्ष में जनसमर्थन है। अपने इसी भय से वो हुसैन की हत्या का हुक्म देता है। जिसके नतीजे में इतिहास की सर्वाधिक लज्जास्पद घटना लगती है।

संग्राम

5.4.5 भारतीय समाज में अंधविश्वास, मानसिकता और पाखंडी साधुओं का चित्रण

हिंदुस्तानी समाज एक लंबे समय तक ढोंगी और पाखंडी साधुओं के मिथ्याचार का शिकार बना रहा। तमाम कुरीतियों का जन्म भी इन्हीं पाखंडी मठाधीशों की देन रही है।

प्रेमचंद के पहले समाज सुधारकों का एक वर्ग जिसमें 'राजा राममोहन राय', 'दयानंद सरस्वती', 'एनी बेझेंट', 'महादेव गोविंद रानडे' प्रमुख थे। समाज की इन्हीं कुरीतियों के खिलाफ लढ़ाई छेड़ चूकी थी। प्रेमचंद ने इसी लढ़ाई को आगे बढ़ाया। अपनी सामाजिक दृष्टी से उन्होने जो कुछ महसूस किया उसने उन्हें धर्म के

---

1. प्रेमचंद - 'संग्राम', पृ. 18

पाखंडी स्वरूप के प्रति विरक्ति दी।

जैनेंद्र के लिखे एक पत्र में उन्होंने लिखा था ''ईश्वर पर विश्वास नहीं आता कैसे श्रद्धा होती है। तुम आस्तिकता की ओर जा रहे हो, जा नहीं रहे पक्के भगत बने रहे हो। मैं संदेह से पक्का नास्तिक बनता जा रहा हूँ।''[1]

चेतनदास भोले-भाले ग्रामीण किसानों को बहलाने के साथ अपनी मुसीबतों से परेशान स्त्रियों को अपनी वासना का शिकार बनाता है। आचरण की पवित्रता का ज्ञान देनेवाले साधु स्वयंकित स्तर तक आचरणहीन हुआ करते है इसकी जानकारी चेतनदास के चरित्र से विस्तार में मिलती है। मन की बात निकालना मोतियों का ढेर लगा देना और अंतर्धान हो जाने का दावा आदि तमाम हतकंडे उसके पास है जिनसे वो औरतों को प्रभावित करके अपना काम निकाल लेता है। सबल की पत्नी को अपना बनाने की धुन में वो हलधर और कंचनसिंह को सबल की हत्या के लिए प्रेरित करता है। कंचनसिंह को भाई की हत्या में संकोच करते देख उत्तेजित करते हुए कहता है - ''यह क्षत्रियों की बाते नहीं है ------ राजेश्वरी तुम्हारी है, प्रेम के नाते उस पर तुम्हारा ही अधिकार''[2]

अंत प्रेमचंद कहते है साधुओं की पाखंड़ को बढ़ावा देनेवाला महत्त्वपूर्ण कारण स्त्रियों का अंधविश्वास है, अशिक्षा से उपजी अंधआस्था ही इन अंधविश्वासों की जननी हो जाती है। जिसके नतीजे में ज्ञानी और गुलाबी जैसी नारियाँ सबकुछ खो बैठती है।

कर्बला

5.4.5 मजहब के वजह से हुसैन और यजीद में संघर्षवृत्ती

मुस्लिम समाज में मजहब, वतन के प्रति संघर्ष रहा है। हुसैन और यजीद के बिच में संघर्ष इसी कारण होता है। मजहब हुसैन की जान है। इस मजहब से ही कर्बला में युद्ध के जरिए सामान्य लोगों का बूरा हाल हुआ है और कर्बला के मैदान में प्रेतों का ढेर लगा दिखाई देता है। मजहब के लिए हुसैन और यजीद में संघर्ष होता है। इसतरह से प्रेमचंद ने 'संग्राम' और 'कर्बला' नाटकों में तत्कालीक प्रासंगिकता बताया है।

5.5 *'संग्राम' और 'कर्बला' की समकालीन प्रासंगिकता*

समाज में समकालीन प्रासंगिकता में मालेगांव में धार्मिक स्थलों में बम्ब विस्फोट, 1993 में बम्बई में बम्ब विस्फोट, बम्ब विस्फोट में दाऊद इब्राहिम का हाथ होना, पाकिस्तान की गुप्तहेर संघटना आय एस आय

1. प्रेमचंद - 'प्रेमचंद के कुछ विचार', पृ. 63
2. शैलेंद्रनाथ श्रीवास्तव - 'प्रेमचंद के नाटक', पृ. 63

के लष्कर-ए-तौयबा, जैश-ए-मोहमंद के दहशतवादी संघटना, पाकिस्तान की लष्करी सेवा, दिल्ली, गुजरात में घातपात की घटना आदि घटनाएँ हमें सोचने के लिए विवश करती है।

भारत 1947 में स्वतंत्र हुआ। इस बीस साल में हजारो भारतीय मारे गए। लेकिन समाज में अनेक समस्याएँ निर्माण हुई, न्याय माँगकर नहीं मिलता, उसके लिए समाज में वीर पुरुष निर्माण होने चाहिए। जैसे शिवाजी महाराज, राणाप्रताप, गुरुगोविंद सिंह और वैचारिक मार्गदर्शक आधारस्तंभ विवेकानंद, योगी अरविंद, सुभाषचंद्र बोस, वीर सावरकर, डॉ. हेडगेवार जैसे समाज निर्माण के दीपस्तंभ आवश्यक है। राष्ट्रीय चेतना, जनचेतना निर्माण करने में अनेक स्वातंत्र्यवीर देश के अनेक प्रांतों में निर्माण हुए है। इसलिए समाज में सामान्य लोगों के हित में उनका शोषण, अन्याय, अत्याचार कम करने का प्रयास किया है। प्रेमचंद ने भी समाज में जनहिताय, जनसमुदाय निर्माण किया लेकिन इन सब में आज भी प्रासंगिकता दिखाई देती है।

5.5.1 किसानों की संघर्षशील वृत्ती

1857 के भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का 150 वा वर्ष का आरंभ हो चुका। इसके साथ ही भारतीय कृषक समाज के कालजयी कथाकार प्रेमचंद की 125 वा जयंति वर्ष समापन के अंतिम चरण में है।

प्रथम 19 वी सदी के संग्राम के सुत्रधारों और प्रेमचंद के बीसवीं सदीं के पात्रों के बीच औपनिवेशिक भारत का खेतिहार समाज और उसके बहुआयामी संघर्ष सेतु की भूमिका निभाते है। विद्रोही सिपाही मंगल पांडे और गोदान का होरी हो या कफन के घीसू व माधव ये सभी औपनिवेशिक खेतिहर समाज की संरचनात्मक त्रासदियों की संताने है। सामाजिक उत्पीड़न भूमी संबंध और राज्य का शोषक वर्गीय व्यवहार, घेराबंदी, 20 वी व 21 वी सदी के खेतिहर समाज के जनसंघर्ष, 18 वी, 19 वी सदी के खेतिहर हथियारबंद संघर्ष करते है तो उत्तर औपनिवेशक भारत के दंतेवाडा, चंद्रपुर, महबूबनगर, सरगूजा, मंडला छोटा नागपुर जैसे क्षेत्रों के मैदानी, पहाड़ी और अरण्य सशस्त्र मुक्ति संघर्षो में सक्रिय दिखाई देते है।

संग्राम में किसानों का शोषण और राजेश्वरी के लिए सबल, कंचन और हलधर इन तीनों में संघर्ष होता है। आज भी इसके दर्शन होते है। पात्र बदलते है परिस्थिति वही है।

कर्बला में खिलाफत पद से हुसैन और यजीद में संघर्ष, सत्, असत् के लिए संघर्ष प्रेमचंद ने दिखाया है। वे आज भी प्रासंगिक है।

5.5.2 किसान और जन की आर्थिक दशा - दिशा

भारत में 60-70 प्रतिशत कृषिप्रधान छोटे और सीमांत किसान ही खेती करते है और 1985 - 60

प्रतिशत, 1985 - 90 के दौरान सकल घरेलू उत्पादन का 14.5 प्रतिशत जो 2000-01 में घटकर 5.9 प्रतिशत रह गया। ग्रामीण रोजगार की वृद्धि शून्य हो गया। अनाज की प्रतिव्यक्ति खपत 1939 - 44 के स्तर से भी नीचे चली गई है यह स्थिति अनर्थकारी है।

2004-05 खाद्यान्नों का उत्पादन 4.2 प्रतिशत घट गया मगर 2005-06 में 2.3 प्रतिशत कमी की पूर्ति नहीं हो पायी। इस वजह किसान बड़ी संख्या में आत्महत्या कर रहे है।

भारत में भयंकर अकाल 1759-1907 के दौरान पड़ा तथा ग्यारवीं चौदहवी सदी के दौरान यानी 400 वर्षो की कालावधि में केवल 14 भयंकर अकाल पड़े। ब्रिटिश राज्य के पहले 50 वर्षो में एक अकाल पड़ा। मगर 1860-1908 के बीच 48 वर्षो के दौरान कोई ना कोई भाग में अकाल पड़ता रहा। इस वजह से किसानों की हालत बहुत बूरी हो गयी और उनका आर्थिक शोषण होता रहा।

'संग्राम' में किसानों का आर्थिक शोषण प्रेमचंद ने हलधर के रूप में दिखाया है।

'कर्बला' में युद्ध के भीषण हानी के पश्चात् मुस्लिम समाज में कूफा प्रांत के लोगों का आर्थिक शोषण दिखाया है। यह आज भी प्रासंगिक है।

5.5.3 प्रेमचंद का नारी के प्रती दृष्टिकोण

प्रेमचंद एक ऐसे रचनाकार है जिनके नाटकों में नारी का चरित्र पूरी सजीवता के साथ दिखाई देता है। प्राचीन भारतीय समाज में नारी को विशेष स्थान था। नारियों को जहाँ सन्मान मिलता है वहाँ देवताओं का वास होता है। हडप्पा और मोहनजोदड़ो स्पष्ट करते है कि आर्यों के पूर्व के सिंधु समाज में नारीओं को विशेष सम्मान दिया जाता था। जैसे-जैसे समय बदला और मध्यकाल तक आते-आते महिलाओं की स्थिति बदलती गयी तथा मुगलकाल में महिलाओं के संबंध में नियमों को और भी अधिक कठोर बना दिया। जैसे पर्दाप्रथा, सतीप्रथा, बालविवाह आदि।

आधुनिक काल में महिलाओं को पुरुषों के बराबर स्थान दिया जाने लगा और आज की नारी अपनी अस्मिता को फिर से पाने लगी है। आज समाज और परिवार में स्त्री की स्थिति किसी भी रूप में पुरुषों से कम नहीं है। लेखक ने यहाँ उच्च, मध्य और सभी वर्ग के नारियों का चित्रण किया है। उसके साथ आदर्शवादी और मर्यादावादी रूप में चित्रित किया है।

संग्राम में ढोंगी, संन्यासी चेतनदास की वासना की शिकार बनी ज्ञानी खुद को मिटा देती है। राजेश्वरी पति का बदला लेने के लिए जमींदारों से प्रेम का नाटक रचाती है और उनसे प्रेम के आवेश से बदला लेना चाहती है। यहाँ प्रेमचंद ने स्त्रियों के दोनों रूपों पर प्रकाश डाला है।

कर्बला में जैनब हुसैन का साथ देती है और युद्ध के लिए प्रोत्साहन भी देती है। इस प्रकार प्रेमचंद के नाटकों में नारी का प्रेयसी, मातृत्व, अर्ध्दांगिनी का रूप खूब निखरा है। यह आज भी प्रासंगिक है।

5.5.4 सामाजिक चेतना - ग्रामीण संदर्भ में

जाहिर है कि उन्नीसवीं शताब्दी में आरंभ हुए साम्राज्यवादी अभियानों की परिणति, बीसवीं सदीं के महायुद्ध में हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराए गए, तथा भारत के संदर्भ में राष्ट्रीयता का उदय, बीसवीं सदी की पतनोन्मुख साम्राज्यवादी धारा में एक निर्णायक हस्तक्षेप है तो दूसरी ओर हमारे अपने समय में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, हिंदू पुनरूत्थानवाद, इस्लामी मूलगामिता तथा जातीवाद, बाबरी मस्जिद का ध्वंस, अमरिका के सर्व शक्तिमान होने के मिथक का टूटना, गुजरात के दंगे, प्रकृति के प्रकोप, आंतकवाद आदि समस्याएँ है।

प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व का ग्रामीण जीवन, जमींदार और किसानों का संघर्ष, पूँजीपतियों और सर्वहरा वर्ग का संघर्ष, महाजन और धनहीन गरीब का संघर्ष और दूसरी ओर परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष, पाश्चात्य मानसिकता और भारतीयता का संघर्ष तथा अस्पृश्यता और पाखण्ड का संघर्ष आदि समाज में प्रस्तुत घटनाएँ लेखक ने यहाँ प्रस्तुत कि है परंतु गाँवों की संस्कृति बहुत ज्यादा नहीं बदली है। स्वातंत्र्योत्तर काल में काफी बदलाव आया है।

संग्राम कथा में प्रेमचंद ने भाई-भाइयों के बीच में संघर्ष, धुर्त चेतनदास का पाखण्डीवृत्ती तथा अंधविश्वास से लोगों को प्रभावित करना, जमींदार और किसानों का संघर्ष, नारी का शोषण आदि ग्राम संस्कृति के प्रतीक है।

कर्बला में सत्-असत् के लिए हुसैन और यजीद का संघर्ष है। स्पष्ट है प्रेमचंद ने यहाँ सामाजिक चेतना प्रस्तुत की है। निश्चित ही प्रेमचंद हमारे अतीत, वर्तमान और भविष्य में चिरन्तन उपस्थित है, अतः वे प्रासंगिक है।

5.5.5 नाटक में वर्णित मुस्लिम संस्कृति

प्रेमचंद मुस्लिम एकता के जबरदस्त समर्थक थे। वे अपने संपूर्ण कथा में इस प्रश्न को याने धार्मिक सहिष्णुता को लेकर चले हैं। उन्होने मानवी आदर्शों की प्रतिष्ठा की है।

उन्होने धार्मिक, सांस्कृतिक एकता व सद्भावना का स्वप्न देखा था वह उनके जीवनकाल में तो साकार न हो सका। आगे तो उस एकता की नींव ही ढ़हती दिखाई दी पर जब तक प्रेमचंद का साहित्य जीवित है, सांप्रदायिकता की घृणित दानवी कभी भी अपने खूनी पंजे मानवता के हृदय पर नहीं गढ़ सकती। प्रेमचंद का

साहित्य उसको एक चुनौती है। मनुष्य को सत्य व्यक्ती तथा वास्तववादी बनाने के लिए साहित्य सबसे प्रभावशाली माध्यम है।

कर्बला में प्रेमचंद ने मुस्लिम समाज पर कथा प्रस्तुत की है। मुस्लिम संस्कृति पर ही कर्बला नाटक उभरकर आता है और पैगंबर, रसूल, मक्का, मदीना धार्मिक स्थलों का भी विवेचन उन्होंने अपने कथा में किया है। मुस्लिम रहन-सहन, प्रथा, परंपरा, परिवार व्यवस्था आदि का चित्रण हुआ है।

इस प्रकार प्रेमचंद मुस्लिम संस्कृति, धार्मिकता को चित्रित करनेवाले प्रासंगिक नाटककार के रूप में उभरकर आए है।

5.5.6 नाटक में गाँव का इतिहास

प्रेमचंद युग प्रवर्तक रचनाकार है। उन्होने हिंदी कथा साहित्य जीवन के यथार्थ से जोड़कर एक नयी परंपरा की बुनियाद रखी। प्रेमचंद एक ऐसा नाम है, जिसके बिना कोई भी कथा, चर्चा अधूरी लगती है।

प्रेमचंद का साहित्य आधुनिक इतिहास का है। साहित्य में ऐसी क्रांतिकारी परिभाषा किसी और लेखक ने की हो क्योंकि अन्याय, अनीति और कुरूचि फैलानेवाली शक्तियाँ आज कम नहीं है, प्रेमचंद भारतीय जनता के मुक्ति संग्राम के सबसे बड़े चितेरे हैं। उनका साहित्य सिर्फ अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्ति हेतु जनता के संघर्ष का साहित्य ही नहीं, बल्कि सामंतवादी पूँजीवादी तंत्र के शोषण उत्पीड़न से त्रस्त किसानों, मजदूरों, दलितों और स्त्रियों की मुक्ति की कामना तथा संघर्ष का जीवंत दस्तावेज भी है। उलझी आम जनता के लिए 'समुझि परहिं नहिं पंथ' की सी स्थिति है।

इतिहास में गांधीजी की भारतीय ग्रामविकास की खोज द्वारा गांधीजी ने भारत की राजनीति को एक ऐतिहासिक मोड़ दिया है।

अंत में प्रेमचंद के साहित्य की लोकप्रियता से यह सिद्ध होता है कि गरीबी, भूख और अन्याय से पीड़ित जनता के लिए भी साहित्य प्रासंगिक होता है। प्रेमचंद के साहित्य की एक बड़ी प्रासंगिकता साहित्य की प्रासंगिकता बनाये रखने में भी है। इसलिए प्रेमचंद को अगर समझना है और उनके बारे में निर्णय करना चाहे तो उनकी रचना में नहीं, बल्कि उस चित्रशाला में उन्हें देखें जहाँ हुसैन और यजीद, अब्दुल्लाह, वलीद तथा संग्राम के सबलसिंह और कंचनसिंह और किसान के रूप में हलधर, फत्तू, हरदास, मँगरू आदि खड़े है। यही उनके सभ्य जीवनसाथी है, इन्हीं को देखकर प्रेमचंद को समझा जा सकता है। यहाँ प्रेमचंद प्रासंगिक रूप में सामने आए है।

5.5.7 सांप्रदायिकता

7 दिसंबर 1932 में बंबई में हुए दंगे, बाबरी मस्जिद और राम मंदिर को लेकर हो रहे दंगे तथा सन 2001 में गोध्रा (गुजरात) में हुए दंगे सांप्रदायिकता के हत्याकांड के जीते जागते उदाहरण है। यह हत्याकांड का तांडव सांप्रदायिक एकता पर ही नहीं बल्कि मनुष्यता पर हुआ सबसे बड़ा आघात है। यह हत्याकांड मनुष्य की क्रूरता, पशुता का सबसे घृणोत्पादक उदाहरण है। जिसमें भारतीय जनता पूरी तरह से पीसती जा रही है।

प्रेमचंद ने 'कर्बला' का उद्देश्य हिंदू-मुस्लिम महापुरुषों के चरित्रों का ज्ञान कराना, सांप्रदायिक एकता बनाए रखना था। यह सत्-असत् के संघर्ष की कहानी है। यहाँ हुसैन का बलिदान गौरव का प्रमाण है। उनकी धारणा है हिंदू-मुसलमान ऐतिहासिक तथ्य को समझे। धर्मान्ध, मजहबी, मतलबी प्रवृत्तिपर प्रहार करनेवाली यह नाट्यकृति आज भी महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

संग्राम में भारतीय समाज की अंधविश्वासी मानसिकता और पाखंडी साधुओं की प्रवृत्ति का प्रतीक है। ढोंग-पाखंडीपन के खिलाफ सशक्त आवाज उठाई है। बाबा चेतनदास का व्यवहार इसका प्रमाण है। हलधर का विद्रोह चेतना का प्रमाण है। अब वह अपमान का बदला लेने के लिए हथियार उठाती है। यहाँ नाटककार अपने लक्ष्यपूर्ति में सफल रहा है। यह आज भी प्रासंगिक है और नाटककार प्रेमचंद अंत में प्रासंगिक नाटककार के रूप में उभरकर सामने आए है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय में इस अंश में विवेचित मुद्दों के आधार पर यह कहा जाता है कि यह कृतियाँ समकालीन उपयोगिता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। संग्राम और कर्बला की तत्कालीन प्रासंगिकता में लेखक ने संग्राम में जमींदार और किसानों के पारस्परिक संघर्ष का चित्रण किया है। लगान के वजह से और एक स्त्री के लिए तीन आदमी आसक्त होने से जमींदार और किसानों में संघर्ष होता है। किसानों का शोषण किया जाता है। जमींदारों की असलियत से किसान लोग जागृत होते है और उनसे संघर्ष करके अपना शोषण कम करने का प्रयास करते है और जमींदार वर्ग की नारीलोलुपता तथा नारी प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

समाज में स्थित किसानों की गरीबी, बेबसी और उनकी गुलामी तथा समाज में फैले अंधविश्वास, अंधश्रद्धा, जातीयता धार्मिकता और किसानों का मानसिक रूप, साधुओं की पाखंडीवृत्ती पर्दापाश करने का प्रयास किया है।

'कर्बला' में सांप्रदायिक वैमनस्य एवं सद्भाव हुसैन की ईमान के प्रति बेहद आस्था और सत्-असत् के लिए संघर्ष तथा यजीद का क्रूरवृत्ती और अन्याय, अत्याचार फैलानेवाला यजीद का रूप दिखाया है। मजहब

के वजह से हुसैन और यजीद में संघर्ष, सत्-असत् तथा खिलाफत पद से संघर्ष का निर्माण इसका चित्रण लेखक ने प्रस्तुत किया है।

'संग्राम' और 'कर्बला' में समकालीन प्रासंगिकता का प्रदर्शन हुआ है। किसानों की संघर्षवृत्ति में किसानों का शोषण एवं संघर्ष दिखाया है। किसान और जन की आर्थिक दशा और दिशा में समाज में स्थित सामान्यजनों की आर्थिक दशा को प्रस्तुत किया है। नारी की स्थिति में नारी का शोषण, विद्रोहीरूप दिखाया है। ग्रामीण संदर्भ में सामाजिक चेतना का संग्राम और कर्बला नाटक में चित्रण किया है। नाटक में वर्णित मुस्लिम संस्कृति में मुस्लिम समाज का चित्रण कर्बला नाटक में किया है। हुसैन और यजीद के रूप में मुस्लिम समाज की संस्कृति उभरकर सामने आती है। नाटक में गाँव के इतिहास का महत्त्व एवं समस्याएँ बताई गई है।

अंत में सांप्रदयिकता में हिंदू मुस्लिम में विद्रोहीवृत्ति और सामजस्यपणा, एकता का उल्लेख आदि सूत्रों के परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया है। संग्राम और कर्बला में चित्रित समस्याएँ जो आज संग्राम में चित्रित प्रेम के संदेश द्वारा खोजा जा सकता है। प्रेम वह शक्ति है जो समस्त समस्याओं एवं संघर्षों का समाधान है। इस दृष्टि से प्रेमचंद द्वारा रचित 'संग्राम' और 'कर्बला' सर्वोत्तम कृति है जो सर्वकालिक प्रासंगिक है।